UGC Approved Journal
© INNOVATIVE RESEARCH THOUGHTS | Refereed | Peer Reviewed | Indexed
ISSN : 2454 – 308X | Volume : 03 , Issue : 11 | October – December 2017

मौर्यकालीन व्यापार एवं अर्थव्यवस्था पर एक विवेचना

Divya Parkash, email- divyaparkash23@gmail.com

सार

आर्थिक दृष्टि से मौर्य काल को बहुमुखी प्रगति का युग कह सकते हैं। इस काल में न केवल कृषि उत्पादन में वृद्धि हुई बल्कि उद्योग, पशुपालन व्यवसाय, खनिज उत्खनन एवं व्यापार में भी अतीव प्रगति हुई। लोहे के अधिक उपयोग के कारण तकनीकी आधार मिला। मगध साम्राज्य के आसपास लोहे की खाने थीं (वर्तमान दक्षिण बिहार क्षेत्र में) और महत्त्वपूर्ण जल और स्थल मार्ग पर उसका नियन्त्रण था। कहा गया है- दक्षिण बिहार के समृद्ध लौह अयस्क तक आसानी से पहुँच होने की वजह से लोग लोहे के औजारों का अधिकाधिक प्रयोग करते थे। हमें मौर्यकालीन सकोटर कुल्हाड़ियाँ, हँसिए और साथ ही हल की फाल मिली हैं। हालाँकि अस्त्र-शस्त्रों पर मौर्य-राज्य का एकाधिकार था,किन्तु अन्य लौह उपकरणों का इस्तेमाल किसी वर्ग तक सीमित नहीं था। उसका निर्माण और उपयोग गंगा द्रोणी से साम्राज्य के दूरवर्ती भागों में फैला होगा।

मुख्य शब्द: आर्थिक, साम्राज्य, औजारों, कृषि , उपकरणों इत्यादि ।

प्रस्तावना

मौर्य-युग में कृषि अधिकांश जनता के जीवन का आधार थी । भूमि राजा तथा कृषक दोनों के अधिकार में होती थी । कृषक युद्ध तथा अन्य राजकीय कर्तव्यों से मुक्त रहने के कारण अपना सारा समय खेतों में ही लगाते थे । लोहे के उपकरणों के भारी मात्रा में प्रयोग के कारण उत्पादन बहुत अधिक बढ़ गया । इस काल में ही मूँठदार कुल्हाड़ियों, फाल, हँसिये आदि का कृषि कार्यों के लिए बड़े पैमाने पर प्रयोग प्रारम्भ हुआ । राज्य की ओर से कृषि को प्रोत्साहन मिलता था । युद्ध के समय में भी सैनिकों को खेतों को हानि न पहुँचाने का आदेश रहता था । कृषि को क्षति पहुँचाने वाले कीड़े-मकोड़े तथा पशु-पक्षियों को नष्ट करने के लिए राज्य की ओर से गोपालक और शिकारी नियुक्त किये गये थे । अधिकाधिक बंजर भूमि को कृषि योग्य बनाया गया।

भूमि बड़ी उर्वरा थी तथा प्रतिवर्ष दो फसलें आसानी से उगाई जा सकती थीं । देश अकाल एवं अभाव से मुक्त था । गेहूँ, जौ, चना, चावल, ईख, तिल, सरसों, मसूर, शाक आदि प्रमुख फसलें थीं । सिंचाई की उत्तम व्यवस्था थी । मेगस्थनीज लिखता है कि भूमि का अधिकांश भाग सिंचित था । कुछ पदाधिकारी नदियों का प्रबन्ध रखते थे ताकि उनसे पानी ठीक से नहरों द्वारा खेतों को पहुंचाया जा सके । अर्थशास्त्र से पता चलता है कि सिंचाई की चार विधियाँ थीं- हाथ द्वारा, कन्धों पर पानी ले जाकर, मशीन द्वारा तथा नदियों, तालाबों आदि से पानी निकाल कर ।

सिंचाई की सुविधा के लिये चन्द्रगुप्त मौर्य ने सुराष्ट्र प्रान्त में सुदर्शन झील का निर्माण करवाया था। रुद्रदामन् के जूनागढ़ लेख से पता चलता है कि इस झील के निर्माण का कार्य चन्द्रगुप्त के राज्यपाल पुष्यगुप्त वैश्य ने प्रारम्भ करवाया था तथा अशोक के राज्यपाल तुषास्प ने इसे पूरा करवाया था।

पशुओं में गाय-बैल, भेड़-बकरी, भैंस, गधे, ऊँट, सुअर, कुत्ते आदि प्रमुख रूप से पाले जाते थे। राज्य की ओर से चारागाहों की भी व्यवस्था थी । अर्थशास्त्र से पता चलता कि चन्द्रगुप्त के समय में पशुधन विकास के लिए एक विशेष विभाग था जो पशुओं के भरण-पोषण एवं उनकी चिकित्सा आदि की उचित व्यवस्था रखता था।

मौर्य युग में व्यापार-व्यवसाय की उन्नति हुई। मौर्य सम्राटों ने सड़कों के निर्माण तथा एकात्मक शासन व्यवस्था की स्थापना करके भारतीय उपमहाद्वीप में व्यापार को प्रोत्साहन दिया। आंतरिक तथा वाह्य दोनों ही व्यापार प्रगति पर थे।

इस समय भारत का वाह्य व्यापार सीरिया, मिस्र तथा अन्य पश्चिमी देशों के साथ होता था। यह व्यापार पश्चिमी भारत में भृगुकच्छ तथा पूर्वी भारत में ताम्रलिप्ति के बन्दरगाहों द्वारा किया जाता था। 'बारबैरिकम' नामक बन्दरगाह सिन्धु के मुहाने पर स्थित था।

यूनानी रोमन लेखक भारत के समुद्री व्यापार का वर्णन करते हैं। एरियन हमें बताता है कि भारतीय व्यापारी मुक्ता बेचने के लिए यूनान के बाजारों में जाते। व्यापारिक जहाजों का निर्माण इस काल का एक प्रमुख उद्योग था।

यह राज्य के नियन्त्रण में होता था जो व्यापारियों को किराये पर जहाज देता था। नवाध्यक्ष नामक पदाधिकारी व्यापारिक जहाजों का नियन्त्रण करता था। समुद्री मार्ग से आने वाली वस्तुयें यदि क्षतिग्रस्त हो जाती थीं तो राज्य उन पर शुल्क नहीं लेता था या क्षति के अनुपात में उसे घटा देता था।

अर्थशास्त्र में विदेशी 'सार्थवाहों' (व्यापारियों के काफिलों) का उल्लेख मिलता है। देश का आन्तरिक व्यापार भी प्रगति पर था। इस समय देश के अन्दर अनेक व्यापारिक मार्ग थे। एक मार्ग बंगाल के समुद्र-तट पर स्थित ताम्रलिप्ति नामक बन्दरगाह से पश्चिमोत्तर भारत में पुष्कलावती तक जाता था।

इसे 'उत्तरापथ' कहा जाता था जिस पर चम्पा, पाटलिपुत्र, वैशाली, राजगृह, गया, काशी, प्रयाग, कौशाम्बी, कान्यकुब्ज, हस्तिनापुर, साकल एवं तक्षशिला जैसे प्रमुख नगर स्थित थे। दूसरा मार्ग पश्चिम में पाटल से पूर्व में कौशाम्बी के समीप उत्तरापथ में मिलता था।

तीसरा मार्ग दक्षिण में प्रतिष्ठान से उत्तर में श्रावस्ती तक जाता था जिस पर माहिष्मती, उज्जैन, विदिशा आदि नगर स्थित थे। चौथा प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग भृगुकच्छ से मथुरा तक जाता था जिसके रास्ते में उज्जयिनी पड़ता था। इस प्रकार उत्तरापथ तथा दक्षिणापथ के भूभाग व्यापारिक मार्गों द्वारा परस्पर संयुक्त कर दिये गये।

व्यापार के ऊपर राज्य का नियन्त्रण होता था। पण्याध्यक्ष बिक्री की वस्तुओं का सूक्ष्मता से निरीक्षण करता था। वह वस्तुओं का मूल्य निर्धारित करता था ताकि व्यापारी जनता से अनुचित लाभ न कमा सकें। व्यापारियों के लाभ की दरें भी निश्चित की गयी थीं तथा इससे अधिक लाभ राजकोष में जमा हो जाता था।

व्यापारी स्थानीय वस्तुओं पर 5% तथा विदेशी वस्तुओं पर 10% का मुनाफा कमा सकते थे। देश के भीतर व्यवसाय एवं उद्योग-धन्धे काफी विकसित अवस्था में थे। कपड़ा बुनना इस युग का एक प्रमुख उद्योग था। अर्थशास्त्र के अनुसार मदुरा, अपरान्त, कलिंग, काशी, बंग, वत्स तथा महिष में सर्वोत्कृष्ट प्रकार के सूती वस्त्र तैयार होते थे। अन्य वस्त्रों में 'दुकूल' (श्वेत तथा चिकना वस्त्र) तथा 'क्षौम' (एक प्रकार का रेशमी वस्त्र) का भी उल्लेख मिलता है।

चीन भूमि के कौशेय (रेशमी वस्त्र) तथा नेपाल के कम्बल का उल्लेख मिलता है। चर्म-उद्योग भी उन्नति पर था। एरियन ने भारतीयों द्वारा श्वेत चमड़े के जूते पहने जाने का उल्लेख किया है जो काफी सुन्दर होते थे। बढ़ईगिरी भी एक प्रमुख उद्योग था।

बढ़ई लकड़ियों द्वारा विविध प्रकार के उपकरण बनाते थे। कुम्रहार की खुदाई में सात बड़े एवं आश्चर्यजनक ढंग से निर्मित लकड़ी के चबूतरे प्राप्त हुये हैं, जिनसे काष्ठ-शिल्प के पर्याप्त विकसित होने का प्रमाण मिलता है। इसके अतिरिक्त धातुकारी का भी उद्योग उन्नति पर था।

सोना, चाँदी, ताँबा, लोहा, शीशा, टिन, पीतल, कांसा आदि धातुओं से विविध प्रकार के अस्त्र-शस्त्र, बर्तन, आभूषण तथा उपकरण बनाये जाते थे। तक्षशिला के भीर टीले तथा हस्तिनापुर की खुदाइयों से नाना प्रकार के बहुमूल्य आभूषणों के प्रमाण प्राप्त होते हैं। लोग धातुओं को गलाने तथा शुद्ध करने की कला से भी परिचित थे।

पाषाण तराशने का उद्योग भी अच्छी अवस्था में था। इस समय के एकाश्मक स्तम्भ पाषाण तराशने की कला की उत्कृष्टता के साक्षी है। साथ ही साथ 50 टन के वजन तथा लगभग 30 फीट से अधिक की ऊँचाई वाले स्तम्भों को पांच-छ: सौ मील की दूरी तक ले जाकर स्थापित करना मौर्यकालीन अभियान्त्रिकी कुशलता को सूचित करता है।

आज के वैज्ञानिक युग में भी यह एक आश्चर्य की वस्तु प्रतीत होती है। हाथी दाँत से भी सुन्दर एवं आकर्षक उपकरण तैयार किये जाते थे। इस समय विभिन्न खनिज पदार्थ बहुतायत से उपलब्ध थे। अर्थशास्त्र में समुद्री तथा भूमिगत दोनों ही प्रकार की खानों का वर्णन मिलता है जिनके लिये अलग-अलग पदाधिकारी होते थे। समुद्री खानों के अधीक्षक का काम उनसे प्राप्त होने वाले हीरे, मोती, दूंगा, शंख, बहुमूल्य पत्थरों आदि के संग्रहण की देखभाल करना होता था।

भूमिगत खानों के अधीक्षक नयी खानों की खोज करते तथा पुरानी खानों के रख-रखाव की व्यवस्था करते थे। खानों में काम करने वाले श्रमिकों के पास वैज्ञानिक उपकरण होते थे। राज्य या तो सीधे खानों का प्रबन्ध करता था या उन्हें पट्टे पर देता था। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि राजा की अनुमति के बिना खान से निकाली धातुओं तथा उनसे तैयार होने वाली वस्तुओं को खरीदने तथा बेचने वाले दोनों पर 600 पण अर्थदण्ड लगाया जाता था।

विभिन्न शिल्पों के अलग-अलग अध्यक्ष होते थे। उद्योग-धन्धों की संस्थाओं को 'श्रेणी' कहा जाता था। जातक ग्रन्थों में 18 प्रकार की श्रेणियों का उल्लेख हुआ है, जैसे काष्ठकारों की श्रेणी, लुहारों की श्रेणी, चर्मकारों की श्रेणी, चित्रकारों की श्रेणी आदि।

श्रेणियों के अपने न्यायालय होते थे जो व्यापार-व्यवसाय सम्बन्धी झगड़ों का निपटारा किया करते थे। श्रेणी-न्यायालय का प्रधान 'महाश्रेष्ठि' कहा जाता था। राज्य की और से विविध प्रकार की वस्तुओं को बनाने के लिये औद्योगिक केन्द्र भी स्थापित किये गये थे।

शिल्पकारों के सुरक्षा की समुचित व्यवस्था थी। शिल्पी के हाथ अथवा आँख को क्षति पहुँचाने वाले को मृत्यु-दण्ड दिया जाता था। जो उनका सामान चुराते थे उन्हें 100 पण का जुर्माना देना होता था। शिल्पियों तथा कारीगरों की मजदूरी कार्य के अनुसार तय की जाती थी।

चाँदी के सिक्कों को 'कार्षापण' या 'धरण' कहा जाता था। तांबे के सिक्के 'माषक' कहलाते थे। छोटे-छोटे ताँबे के सिक्के 'काकणि' कहे जाते थे। ये सिक्के शासकों, सौदागरों एवं निगमों द्वारा प्रचलित किये जाते थे तथा इन पर स्वामित्व-सूचक चिह्न लगाये जाते थे।

उल्लेखनीय है कि उत्तर प्रदेश तथा बिहार से बड़ी संख्या में प्राप्त चाँदी के आहत-सिक्कों में से अधिकतर मौर्यकाल के ही हैं। मौर्यकालीन सिक्के मुख्यतः चांदी और तांबे में ढाले गये हैं। प्रधान सिक्का 'पण' होता था। जिसे 'रुप्यरूप' भी कहा गया है। अर्थशास्त्र में राजकीय टकसाल का भी उल्लेख मिलता है जिसका अधीक्षक "लक्षणाध्यक्ष" होता था। मुद्राओं का परीक्षण करने वाला अधिकारी 'रुपदर्शक' कहा जाता था। मौर्य शासन का वित्तीय वर्ष अषाढ़ (जुलाई) माह से प्रारम्भ होता था।

उपसंहार

मौर्य-काल में जनगणना के निमित्त एक स्थायी विभाग की स्थापना की गयी थी। इसका उल्लेख मेगस्थनीज तथा कौटिल्य दोनों ने ही किया है। मेगस्थनीज के अनुसार तीसरी समिति नगर की जनगणना का कार्य करती थी। अर्थशास्त्र से पता चलता है कि प्रत्येक ग्राम तथा नगर में चारों वर्षों की जनगणना ग्रामीण अधिकारियों तथा जनगणना विभाग द्वारा की जाती थी। मनुष्यों के साथ ही साथ उनके व्यवसाय, चरित्र, आय, व्यय आदि का भी पूरा ब्यौरा सुरक्षित रखा जाता था। इससे राज्य को विभिन्न वर्गों के ऊपर कर निर्धारित करने के काम में बड़ी सहायता मिलती थी। मौर्य-शासन में निर्धन व्यक्तियों को धनी व्यक्तियों तथा साहूकारों के शोषण से बचाने के निमित्त उनके द्वारा उधार दिये जाने वाले धन पर ब्याज की दर सुनिश्चित-कर दी गयी थी। इन नियमों का पालन न करने वालों को कठोर दण्ड दिये जाते थे।

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची :

[1] कौटिल्य का अर्थशास्त्र-जायको पब्लिशिंग हाउस, पृ0 102

[2] कौटिलीय अर्थशास्त्रम्-वाचस्पति गरोला, भूमिका भाग

[3] 2 कौटिल्य अर्थशास्त्र-जायको पब्लिशिग हाउस, पृ0 102

[4] कौटिलीय अर्थशास्त्रम् - वाचस्पति गैरोला, चैखम्बा विद्याभवन, वाराणसी, पुनर्मुद्रित संस्करण, 2011

[5] कामन्दकीय नीतिसार - जयमप्रल उपाध्याय, आनन्द आश्रम परकाशन, बम्बई, 1982

[6] मुदराराक्षस - रांय गे घव, राजपाल पब्लिशिंग, नई दिल्ली, 2007

[7] मनुस्मृति – डॉ०राम निहोर पाण्डेय, प्राच्य विद्या संस्थान, इलाहाबाद, 2003

[8] कौटिल्य का राजनीतिक चिन्तन डॉ० ब्रह्मदत्त शर्मा, पोइन्टर पब्लिशर्स, जयपुर।